Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Sanskrit Literature
Research Link - 159, Vol - XVI (4), June - 2017, Page No. 61-62
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

मनुस्मृति में पर्यावरण

प्रस्तुत शोधपत्र, मनुस्मृति में चित्रित पर्यावरण से सम्बंधित है। हमारी संस्कृति तपोवन की संस्कृति है। हमारी संस्कृति में पर्यावरण (प्रति) को देव के रुप में स्वीकृत किया गया है। स्मृति काल में पर्यावरण संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। कहा गया है कि उत्तम जीवन के लिए प्रति की रक्षा की जानी चाहिए और यह कहते हुए आध्यात्मिक आयाम को देखता है तथा मनुष्य की सृजनात्मकता और आत्म-विकास को प्रेरित करने वाली सुन्दरता की बात भी सोचता है, तो उसका भाव प्रति से मेल-जोल का होता है न कि भिडंत का। प्रति, मनुष्य की भीतरी प्रति के साथ मिलकर सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् की सृष्टि करती है। प्रति का पुत्र मनुष्य प्रति में माँ की ममता को खोजता है। कहा भी गया है कि ''माता भूमि पुत्राडह पृथ्वियाः।''

सूर्यबाला चौबीसा

आदिकाल से ही मानव की जिज्ञासु प्रवृति ने उसे अपने चारों ओर के संसार को जानने–समझने के लिए प्रेरित किया है। अस्तित्त्व रक्षा के लिए पर्यावरण के विविध अंगों को जानना भी आवश्यक है। मानव ने पर्यावरण के विषय में अपने ज्ञान का उपयोग उसके प्रति अनुकूलन समायोजन करने के साथ ही अपनी सुविधा एवं सुरक्षा के लिए पर्यावरण को परिवर्तित करने में भी किया है। इसका प्रमाण मानव कृत आविष्कार है। यथा– कृषि, ग्रह निर्माण इत्यादि। सतत् तथा सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा पर्यावरण अध्ययन करते हुए मानव को यह ज्ञान भण्डार क्रमशः समृद्व होता गया है। किसी विषय का प्रामाणिक वस्तुनिष्ठ विशिष्ट ज्ञान ही विज्ञान है। पर्यावरण के अध्ययन का विज्ञान ही पर्यावरण विज्ञान या पारिस्थितिकी कहलाती है। ''परितः आवृणोतीति'' इस व्युत्पत्ति के आधार पर पर्यावरण शब्द का अर्थ चतुर्दिक आवरण से है। अंग्रेजी भाषा में Environment शब्द पर्यावरण का पर्याय माना जाता है। वस्तुतः किसी भी जीव के चारों ओर विद्यमान वह समस्त सजीव–अजीव परिवेश ही पर्यावरण है, जिसमें जीव निवास करता है।

आज समूचे विश्व में बिगड़ते पर्यावरण और बढ़ते प्रदूषण को लेकर महत्ती चिंता प्रकट की जा रही है। आज विश्व की सबसे बड़ी सबसे गहन ज्वलन्तु समस्या के रूप में इसे देखा और समझा जा रहा है। कटते वन और बढ़ते जन समूची सृष्टि के अस्तित्त्व के समक्ष प्रश्नचिन्ह लगा रहे हैं। पर्यावरण को शुद्ध रख पाने को उपक्रम जटिलत्तर होता जा रहा है। बीसवीं सदी उत्तरार्द्ध से यह समस्या भयावह रूप धारण कर चुकी है। ओजोन की पल–पल पतली होती हुई परत पृथ्वी का निरन्तर भीतर ही भीतर गर्म होते जाना, पानी की सतह का निरन्तर नीचे जाना, फैलते रेगिस्तान, सिकुड़ते वन, मिटती हुई पशु–पक्षी सम्पदा प्रदूषित नदियाँ सभी जोर शोर से सही व्यंजित कर रहे है कि कदाचित् सर्वनाश निकट है। यदि इस दिशा में त्वरित और ईमानदारी से प्रयास नहीं किए गए तो सारी सृष्टि का विनाश होता जाएगा। अतः इनकी सुरक्षा करना अनिवार्य है।

इस संदर्भ में यदि हम चिन्तन करें तो हम पाते हैं कि हमारे पास संस्कृत साहित्य से बढ़कर और कोई प्रामाणिक साक्ष्य सुलभ नहीं है। अतएव भारतीय पर्यावरण चिन्तन परम्परा के अनुशीलन के लिए संस्कृत–साहित्य के विविध पक्षों का समालोकन ही समचीनी होगा। क्योंकि वैदिक साहित्य, पुराण स्मृति ग्रन्थ, आर्ष काव्यय तथा लौकिक संस्त साहित्य में पर्यावरणीय ज्ञान कलात्मक व प्रतीकात्मक रूप से अनुस्यूत है। संस्कृत साहित्य में पुरुषार्थ चतुष्ट्य प्रतिपादित स्मृति ग्रन्थों में पर्यावरण विषयक चतुष्ट्य प्रतिपादक स्मृति ग्रन्थों में पर्यावरण विषयक प्रारम्भिक ज्ञान तथा पर्यावरण संरक्षण के लिए जन चेतना जागृत करने वाले अनेक उपाय संग्रहित है। पर्यावरण संरक्षण विषयक ज्ञान के इन्हीं अक्षय भण्ड़ारों की सरल तथा सरस भाषा में जन समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

स्मृति ग्रन्थों में प्राचीनता श्रेष्ठतम एवं प्रामाणिक मनुस्मृति को ही माना जाता है। ऋग्वेद में मनु को मानव जाति का पिता (जनक), प्रथम यज्ञ का कर्त्ता, सन्मार्ग का प्रवर्तक कहा गया है कि ''जो कुछ मनु ने कहा है वह औषध है।'' इसके अतिरिक्त गौतम धर्म सूत्र तथा यास्क निरूक्त में भी मनु नामोल्लेख मिलता है। भगवद्गीता में भगवान श्रीष्ण अर्जुन को कर्म योग का उपदेश देते हुए कहते है कि ''उन्होंने यह अविनाशी योग–उपदेश सूर्य को दिशा, सूर्य ने इसे अपने पुत्र वैवस्वत मनु को तथा मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु को दिया था।'' इस प्रकर मनु भारतीय वाङ्मय में अतिप्राचीन एक दिव्य पुरुष के रूप में प्रसिद्ध है।

इस प्रकार सम्पूर्ण मनुस्मृति में मानव धर्म संस्कार कर्त्तव्य आदि का वर्णन मिलता है। तथा इस स्मृति में प्रति (पर्यावरण) को लेकर व्याख्या की गई है। मनुस्मृति में वृक्षों के क्षत–विक्षत करने

संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

और उनकी त्वचा के कुछ छीलने का प्रबल विरोध किया है :

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वृक्षन प्रभवास्तथा ।।
शेलूं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।। 6।।

अर्थात् पेड़ों का लाल गोंद तथ पेड़ो को काटने (त्वचा का अंश छिलने) से उत्पन्न गोंद, लंसोडा का प्रयोग न करें तथा फेनुस इनको खाना प्रयत्नपूर्वक छोड़ दें।

हम धर्म के मूल तत्त्व को सर्वथा भूल गए हैं। समन्वय परस्पर प्रेम और सद्भाव में सबका योगक्षेम व्याप्त है। समग्र जगत उस परम सत्य और परम तत्त्व की अभिव्यक्ति है। वृक्षों में भी प्राण होते हैं। उनको सुख–दुःख की स्वानुभूति होती है। पेड़ों की त्वचा का अंश छीलने से या पेड़ो की त्वचा का अंश छीलने से या पेड़ों का काटने अथवा गोंद के लिए लघु आघात करने से उन्हे असह्य पीड़ा होती है। सर्वभूतों को आत्मवत् स्नेह दृष्टि से देखकर उन्हें संरक्षण दे। स्वप्न में भी वृक्षों पर कुल्हाड़ी न चलावे। वृक्ष हमें सह–अस्तित्व की एवं परोपकार की प्रेरणा देते है। एक वृक्ष से हमें लाखों रूपयों की ऊर्जा– सामग्री सहस्त्रों लोगों को प्राण वायु का लाभ हजारों लाखों कीट–पक्षियों की वृक्ष ही शरणस्थली आवास है। जल प्लावन से रक्षा, फल–फूल, वनस्पत्ति व जड़ी–बुटियों के रूप में, वर्षा में सहायक तथा पर्यावरण के सन्तुलन में सहभागिता के रूप में वृक्ष अपनी उपयोगिता का दिग्दर्शन करता है। फूलों को तोड़ना भी भ्रष्टता की सरंचना करता है। इस प्रकार प्रति के साथ अनाचार–दुराचार और सौन्दर्य–बोध के साथ खिलवाड़ है। पर्यावरण की रक्षा के बिना मनुष्य जाति का भविष्य अन्धकारमय और दुर्भाग्यपूर्ण होगा।

मनुस्मृति में मानसिक पाप दूषित नदी–प्रवाह पात्रादि की शुद्धता तथा अनेक प्रकार के प्रत्ययों की शुद्धि का निर्णय हमें निम्न श्लोकों के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है :

मृतायैः शुद्धयते शोध्यं नदी वेगेन शुद्धयति।
रजमा स्त्री मनोदुष्टा सन्यासेन द्विजोत्तम।।''
अद्विर्गात्राणि शुद्धचन्ति मनः सत्येम शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यां भूतानां बुद्विर्ज्ञानेन शुद्धयति।।
तैसजानां मणीना चैव सर्वस्याश्ममयस्य च।
भस्मनाऽद्विर्मृदा चैव शुद्विरूक्ता मनीषिभिः।।
निलेषं कांचनं भाण्डमद्विरेव विशुद्धयति।
अब्जमश्मयं चैव राजतं चानु पुरस्तम्।।
अपानमग्नेक्षः संयोगाद्वैम रौप्य च निष्रभौ।
तस्मात्तयोः स्वयोत्यैव निर्णको गुणवत्तरः।।

मनु. 5.108–113

अर्थात् मलिन (मैले पात्र आदि) मिट्टी तथा जल से, नदी वेग (थुंक, खंकार एवं मल–मूत्रादि से दूषित नदी–प्रवाह) अर्थात धारा से, मानसिक पाप करने वाली स्त्री रजु (रजस्वला होने) से और ब्राह्मण सन्यास से शुद्ध होते हैं। पसीना आदि से दूषित शरीर जल से (स्नानादि कर्म) (निषिद्ध विचार–दूषित मन सत्य से जीवात्मा ब्रह्मविद्या तथा तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है। तैजस पदार्थ (सोना आदि) मणि (मरकट, पन्ना आदि रत्न) और पत्थर के बने सर्वाविक पदार्थ (बर्तन आदि) विद्वानों ने कहा है। घृत आदि के लेप से रहित (तथा जो जूठा न हो ऐसे) सुवर्ण–पात्र, जल में होने वाले शंख–मोती आदि, फूल–पत्ती या चित्रादि से रहित सादा चांदी के बर्तन आदि को शुद्वि केवल जल से ही होती है। पानी तथा अग्नि के संयोग से सुवर्ण तथा चाँदी उत्पन्न हुए है अतएव इन (सूवर्ण तथा चाँदी) की शुद्वि भी अपनी योनि (उत्पत्ति स्थान अर्थात जल और अग्नि) से ही उत्तम होती है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में कर्मकाण्ड की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। मनुस्मृति में यज्ञ द्वारा पर्यावरण शुद्वि की व्याख्या की गई है। यज्ञ के आयोजन से ही धरा पर पर्यावरण की शुद्धि होती है। यज्ञ मय वातावरण में मानव की प्रत्येक श्वास में दीर्घायु व सुस्वास्थ्य की मनोरम झांकी परिलक्षित होती है। जैसा कि मनुस्मृति में कहा गया है –

''पंच सुना गृहस्थ चुल्ली पेषष्युपरस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तुबाहयन्।।
तासां क्रमेण सर्वासां निष्त्यर्थं महर्षिभिः।
पच क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्।।

मनु. 3.8.69

मनुस्मृति में पच सूनाजन्य दोषों का वर्णन किया है। इस प्रकर पंचसूना दोषो से मुक्ति पाने के लिए पंचमहायज्ञ परमावश्यक और नित्य करणीय है। ये पच–महायज्ञ अधिक प्रव्य साध्य भी नहीं है और न ही समय साध्य है। चूल्हा–चक्की, झाड़ू, ओखली और जल का पात्र ये पाँच हिंसा के स्थान है। इनका प्रयोग पापकर्म को बढ़ाता है। इस प्रकार इनके निदान हेतु पंच महायज्ञ प्रतिदिन करने का आदेश दिया गया है।

श्रोतकर्मकाण्ड में प्रति यज्ञ तीन स्वीकारे गए हैं। अग्निहोत्र, इष्टि, पशु व सोम इनमें सायणाचार्य ने पशु का इष्टि में ही अन्तर्भाव कर दिया है। प्रदूषण निवारण यज्ञ का योगदान सर्वतः समृद्व कहा जा सकता है। मनुस्मृति में वनस्पति तथा वृक्ष दोनों में क्या भिन्नता है। उसका कथन करते हुए कहते हैं :

''अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृत्यः।
पुष्पिणाः फलिनचैव वृक्षा स्तूभयतः स्मृताः।।

(प्रथम/48)

अर्थात् मनु वृक्ष और वनस्पति की भिन्नता का वर्णन करते हुए कहा है कि जिनमें फूल नहीं खिलते हैं, किन्तु वृक्ष उभयस्वरूप होते हैं, जो फूलते भी हैं तथा फलते भी हैं।

हमारी संस्कृति तपोवन की संस्कृति है। हमारी संस्कृति में पर्यावरण (प्रति) को देव के रूप में स्वीकृत किया गया है। स्मृति काल में पर्यावरण संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। इस प्रकार कहा गया है कि उत्तम जीवन के लिए प्रति की रक्षा की जानी चाहिए और यह कहते हुए एक आध्यात्मिक आयाम को देखता है तथा मनुष्य की सृजनात्मकता और आत्म–विकास को प्रेरित करने वाली सुन्दरता की बात भी सोचता है तो उसका भाव प्रति से मेल–जोल का होता है न कि भिड़न्त का तब दूर–दूर तक बाहर फैली हुई है। प्रति, मनुष्य की भीतरी प्रति के साथ मनुष्य की भीतरी प्रति के साथ मिलकर सत्यं शिवम् और सुन्दरम् की सृष्टि करती है प्रति का पुत्र मनुष्य प्रति में माँ की ममता का खोजता है। ''माता भूमि पुत्राडह पृथिव्याः।''

सन्दर्भ :

(1) मनुस्मृति (4/6). ***(2)*** *शास्त्री, डॉ.शंकरलाल : संस्कृत वाड्मय में पर्यावरण, पृ. 75.* ***(3)*** *भगवतगीता (5 अध्याय)।* ***(4)*** *मनुस्मृति (4/6).* ***(5)*** *शास्त्री, डॉ.शंकरलाल : संस्कृत वाड्मय में पर्यावरण, पृ. 108.* ***(6)*** *मनुस्मृति (1/48).* ***(7)*** *मनुस्मृति (3.8.49).* ***(8)*** *मनुस्मृति (5/108–113).*

❁ ❁